मई १९८९ हिंदी पत्रिका में प्रकाशित

धन्य हुई वैशाख पूर्णिमा!

- **वर्ष** :महाशाक्यराज संवत्, ६८
- **ऋतु** :ग्रीष्म
- **मास** :वैशाख
- **दिवस** :शुक्र वार
- **तिथि** :पूर्णिमा
- **नक्षत्र** :विशाखा
- **समय** :उषाकाल ब्रह्म मुहूर्त

ग्रीष्म के तप से उत्तप्त हुई धरती को सारी रात शुद्ध शीतल शर्वरी (ज्योत्स्ना) से नहलाकर पूर्णिमा का चांद अब विश्राम के लिये पश्चिमी क्षितिज की ओर बढ़ रहा है। पूर्वी क्षितिज पर बाल रवि के शुभागमन का संदेश लिये हुए, ऊषाकुमारी गगनांगन में प्रकाशकणबखेर रही है और संसार को दैनंदिन जीवनदान दे रही है।

स्थान : द्वीपों में श्रेष्ठ जंबूद्वीप के बीचोबीच स्थित मज्झिम देश का मध्य-उत्तरी भाग; उत्तुंग हिमगिरि के चरणांचल में बसा शाक्य प्रदेश। एक ओर शाक्य राजवंश की राजधानी कपिलवस्तु और दूसरी ओर शाक्यों की ही एक शाखा कोलिय राजवंश की राजधानी देवदह। दोनों के बीच सुषुमाश्री संपन्न लुंबिनी शालवन, जो कि दोनों राज्यों के नागरिकों के आमोद प्रमोद के लिये आरक्षित-सुरक्षित है।

अवसर : कपिलवस्तु के शाक्य गणराज्य के महासम्मत महाराज शुद्धोदन की अग्र राजमहिषि देवी महामाया दस महीने का गर्भ धारण किये हुए प्रसवहेतु पतिगृह से पितृगृह देवदह के लिये यात्रा कर रही है। साथ अनेक सौनिक संरक्षक हैं और राजसी दास-दासियां। स्वर्ण-पालकी में बैठी राजरानी का ध्यान सुरम्य वनश्री के चित्तरंजन ऐश्वर्य की ओर आकर्षित होता है। लुंबिनी के शालवृक्षों की डालियां, रंगबिरंगे सुंदर फूलों से लदी हुई हैं। इन फूलों के मधुर गंधपराग से समस्त वायुमंडल सुरभित है। भौरों के झुंड के झुंड चारों ओर गुंजार कर रहे हैं। नाना रंग-रूप वाले खगकुल अपने मधुर कूजन कलरव और चहचहाट भरे वाद्यवृंद से वातावरण को मुखरित कर रहे हैं। तरुशाखाओं को शिखरपताकाओं की तरह प्रकंपित करनेवाला लुभावना समीर यात्रिओं को आमंत्रित कर रहा है।

महारानी महामाया की इच्छा हुई कि कुछ देर इस नंदनवन सदृश लुंबिनी वनस्थली की सैर करे। पालकी रूकवाकर वह उतरी और निसर्ग के वैभव का आनंद लेने के लिये वन वीथि पर टहलने लगी। जैसे तेल से लबालब भरे हुए प्याले को हथेली पर रखकर कोई बहुत सजग होकर चले, जिससे कि तेल की एक बूंद भी छलक ना पाए, ऐसे ही अपने गर्भ में स्थित दिव्य बालक का ध्यान रखते हुए धीमे कदमों से टहलने लगी। समीप के एक शाल वृक्ष पर नजर पड़ी और उसकी झूमती हुई पुष्प पल्लवित डाल के आह्वान-संकेत ने महारानी को आकर्षित, आमंत्रित किया। वह उस शाल वृक्ष के नीचे गयी। डाल पकड़ने के लिए पंजों के बल जरा ऊंची हुई तो हवा के झोंके से वह डाल स्वतः झुक आयी। महामाया ने उसे अपने दाहिने हाथ से पकड़ा और कुछ क्षण प्रकृति के निश्छल, निर्मल सौंदर्य को देखती रह गयी। पश्चिम में चांद डूबता जा रहा था। पूरब में बाल रवि अपनी अरुण किरणे बिखराता हुआ उदय हो रहा था।

इसी समय पके हुए गर्भ का उत्थान हुआ। साथ आयी परिचारिकाओं ने सहारा दिया। कुछ सेवकों ने वहीं कनात तान दी, और दूर हट गये। कुछ क्षणों के लिए मुखर प्रकृति निःशब्द हो गई। चंचल निसर्ग अचल, अडोल हो गया। सारे वातावरण में मौन उत्सुकता छा गयी। किसी अत्यंत महत्त्वपूर्ण घटना घटने की संभावना से सारे दृश्य-अदृश्य प्राणी स्तब्ध सजग हो गये।

और सचमुच उस समय एक ऐसी महत्त्वपूर्ण घटना घटी जो सदियों में कभी कभार ही घट पाती है। माता महामाया ने वहीं खड़े खड़े प्रसव किया। बुद्धांकुर महासत्त्व माता के उदर से खड़े खड़े ही जन्मा। नवजात शिशु के पांव धरती पर लगे। और.....

धरती धन्य हुई, पावन हुई। समस्त पृथ्वी हर्षविभोर होकर प्रकंपित हो उठी। सारा चक्रवाल (सौरमंडल) पुलक रोमांच से प्रकंपित हो उठा। और इस चक्रवाल के समीपवर्ती दससहस्र चक्रवाल प्रसन्नता की तरंगों से तरंगित हो गये। निरभ्र आकाश में गड़गड़ाहट हुई मानो देव दुंदुभी बजी। प्रमुदित पेड़ों के प्रफुल्लित सुमन बोधिसत्त्व के सम्मान सत्कार के लिए बिखर बिखर कर धरती को आल्हादित करने लगे। सारी प्रकृति देव-पुष्पों की दिव्य पराग-सुरभि से गमक उठी।

बोधिसत्त्व ने किसी राजमहल के बंद कक्ष में जन्म नहीं लिया। समस्त प्रकृति के सारे रहस्यों का अनुसंधान और उद्घाटन करने वाला यह सत्यान्वेषी महामानव खुली प्रकृति में, खुले आकाश के नीचे, रुक्खमूल के समीप, वनप्रदेश की खुली धरती पर जन्मा। सचमुच धरती धन्य हुई। परम पावन हुई। जन जन द्वारा पूज्य हुई।

लगभग ३०० वर्ष पश्चात् भारत-सम्राट देवानाम् प्रिय प्रियदर्शी धर्मराज अशोक ने इस धरती के पूजन के लिए धर्मयात्रा की और इस स्थल पर एक राजसी धर्मस्तंभ की स्थापना की। आज तक कृतज्ञता विभोर मानव-समाज इस धरती का दर्शन करके ,इसे शीश नवाकर, यहाँ की पावन धर्मतरंगों से लाभान्वित होता रहा है। भविष्य में भी सदियों तक ऐसा ही होता रहेगा। और.....

माता महामाया धन्य हुई। उसकी पुरातन धर्म कामना फलीभूत हुई। इक्यानवे कल्पपूर्व भगवान विपश्यी सम्यक् सम्बुद्ध के समय वह राजा बंधुमा की ज्येष्ठ राजकुमारी थी। पिता के साथ भगवान सम्यक्सम्बुद्ध के दर्शन करने और उनके धर्मप्रवचन सुनने गयी। भगवान के आकर्षक व्यक्तित्व को देख कर और उनका कल्याणकारी धर्मोपदेश सुनकर अत्यंत भाव विभोर हो उठी। ओह! धन्य है वह माता! जिसने ऐसा सपूत जन्मा, जो कि अत्यंत करुण चित्त से असंख्य दुखियारे प्राणियों को भवबंधन से नितांत विमुक्त हो सकने का मंगल मार्ग दिखा रहा है। मैं भी ऐसी ही भाग्यशालिनी बनूं। ऐसे ही सुवर्णवर्ण तेजस्वी बोधिसत्त्व को गर्भ में धारण कर बुद्धमाता होने का सौभाग्य प्राप्त करूं। परंतु बोधिसत्त्व के अंतिम जीवन में उसे जन्म देनेवाली जननी बनने के लिए अनेक कल्पों तक पुण्य पारमिताओं को पूर्ण करना होता है। अनेक कष्ट झेलने पड़ते हैं। मैं इन सबके लिए प्रस्तुत हूं। सम्यक्सम्बुद्ध भगवान विपश्यी ने उसका ऐसा दृढ़ संकल्प देखा तो मुस्कुराकर उसे आशिर्वाद दिया। तब से इक्यानवे कल्पों तक अनगनित जन्मों में अपनी पारमिताओं को पूरा करने के पुनीत पथ पर चल पड़ी। एक एक भव, एक एक भव में पारमिताओं का संग्रह करते हुए, अंततः यह योग्यता प्राप्त की कि जब तुषित लोग में जन्मे हुए, संतुषित श्वेतकेतु नामक देवपुत्र बोधिसत्त्व ने अपने लिए अंतिम जन्म देने वाली माता का चुनाव किया तो इस ५५ वर्ष ४ महीने की मज्झिम वय वाली महारानी महामाया को ही इस योग्य पाया।

कोलिय महाराज अंजन की ज्येष्ठ पुत्री महामाया कपिलवस्तु के महाराज शुद्धोदन से ब्याही गयी। पीहर और ससुराल के सारे राजसी वैभव में जन्मी पली और इसी माहौल में अपने जीवन के ५६ बसंत

बिताए। परन्तु सदैव सहज भाव से अखंड रूप से पांचों शीलों का पालन करती रही। न तो अन्य सामान्य राजपुत्रियों और राजमहिषियों की तरह कामक्रीड़ा में रत रहती थी, न मद्यप थी, न वाचाल थी, और न ही अशांत, उद्विग्न थी। ऐसी साध्वी स्वभाव की माता ही बोधिसत्त्व के अंतिम जन्म की जननी बनने योग्य थी।

बोधिसत्त्व को जन्म देने वाली मनोरथपूर्णा माता महामाया पुत्र जन्म के तुरंत बाद पतिगृह लौट आयी और एक सप्ताह पश्चात् ही उसकी शरीरच्युति हो गयी। उसने तुषित लोक में माया नाम के देवपुत्र के रूप में जन्म लिया।

कालांतर में सिद्धार्थ गौतम सम्यक् संबुद्ध बने। उन्हें अपने इस अंतिम जन्म की माता का ध्यान आया। उन्होंने देवलोक में जाकर अभिधम्म की देशना दी और अनेक देवों के साथ अपनी जन्मदायिनी माता का उपकार किया। उसे विमुक्ति-पथ पर स्थापित किया। महामाया बोधिसत्त्व को जन्म देकर सचमुच धन्य ही हुई। और.....

स्वयं बोधिसत्त्व भी धन्य हुआ। उसकी लंबी भवयात्रा पूर्ण होने का समय आया। बोधिसत्त्व ने सभी पारमिताएं परिपूर्ण की, परिपुष्ट की और अब स्वयं सम्यक् सम्बुद्ध बन सकने योग्य अंतिम जीवन प्राप्त किया।

बोधिसत्त्व की कितनी लंबी भव यात्रा! चार असंख्येय (एक असंख्येय माने एक के आगे एक सो चालीस बिंदी लगे) और एक लाख कल्प पूर्व यही सत्त्व (प्राणी) सुमेध नाम से किसी समृद्ध ब्राह्मण गृहस्थ के घर में जन्मा था। कामभोग के प्रति विरक्ति जागने के कारण वह घर त्याग कर संन्यासी बना और ध्यान भावना में लग गया। समय पाकर आठों ध्यानों में पारंगत हुआ। पर मुक्त अवस्था प्राप्त नहीं हुई। ऐसी हालत में अपने किसी पूर्व पुण्य-कर्म के कारण सम्यक् सम्बुद्ध भगवान दीपंकर के संपर्क में आया। उसी समय वह इस योग्य था कि उनसे विपश्यना साधना सीखकर नितांत भव-विमुक्ति की अवस्था प्राप्त कर लेता। परंतु उसने देखा कि वे भगवान महाकारुणिक किस प्रकार अनेक प्राणियों के हितसुख में लगे हैं। यह देखकर उसके मन में यह धर्म संवेग जागा-केवल अपनी ही मुक्ति के लिए परिश्रम करना उचित नहीं, इस भव-संसार में अनगनित प्राणी दुख-चक्र में पिसे जा रहे हैं। क्यों न मैं भी ऐसी ही सर्वज्ञता प्राप्त करूं जिससे कि इन सबकी मुक्ति में सहायक बन सकूं। क्यों न मैं इन्हीं भगवान दीपंकर की भांति सम्यक् संबुद्ध बनूं। भले इसके लिए मुझे अथक परिश्रम करना पड़े। ऐसी योग्यता प्राप्त करने में भले कल्पों लग जाय। भव-भ्रमण के यह सारे कष्ट सहन करने के लिए मैं सहर्ष प्रस्तुत हूं। त्रिकालज्ञ भगवान दीपंकर ने जब तापस सुमेध के मन की ऐसी तीव्र धर्मकामना देखी तो उसे आशिर्वाद दिया और भविष्य वाणी की –

'पस्सथ इमं तापसं, जटिलं उग्ग तापनं।
अपरिमेय्यो इतो कप्पे, बुद्धो लोके भविस्सति॥'

- 'देखो, उग्र तपस्या करनेवाले इस जटाधारी तापस को देखो! इस कल्प के पश्चात् अपरिमित कल्पों के बीतने पर यह व्यक्ति इस लोक में बुद्ध बनेगा।'

सम्यक् सम्बुद्ध की यह भविष्य-वाणी तापस सुमेध के लिए बोधि बीज बनी। और इस बीज को धारण कर यह सत्त्व (प्राणी) बोधिसत्त्व बना। उसी समय चारों ओर से प्रेरणा के यह दिव्य शब्द गूंजे –

'दळहं पग्गण्ह विरियं, मा निवत्त अभिक्कम।
मयम्पेतं विजानाम, धुवं बुद्धो भविस्ससि॥'

'दृढ़ पराक्रम में लग जाओ। आगे बढ़ते ही रहो। पीछे कदम न हटाओ! हम जानते हैं कि तुम निश्चय ही बुद्ध बनोगे।'

इसे सुनकर तपस्वी सुमेध के मन में अतुलनीय धर्म-उत्साह जागा और इन मंगल आशीर्वचनों का संबल लिये हुए वह दृढ़ पराक्रम में लग गया।

और कल्प दर कल्प, भव भ्रमण करता हुआ, हर भव में कोई न कोई पारमी पुष्ट करता हुआ, हर भव में जो अनेक अनेक प्राणी संपर्क में आये उन्हें शुद्ध धर्म की देशना देता हुआ, उनके हृदय में धर्म का बीज बोता हुआ और स्वयं धर्म का आदर्श जीवन जी कर उन सब के लिये प्रेरणा श्रोत बनता हुआ, सारी पारमिताएं परिपूर्ण कर चुकने पर अब उसने यह अवस्था प्राप्त कर ली जो कि इसी जीवन में उसे सम्यक् सम्बुद्ध बना देगी। जो इतनी बड़ी मात्रा में इन दस पारमिताओं का संग्राहक धनी है, जो सम्यक् सम्बुद्ध बनने की परिपक्व अवस्था में पहुंच चुका है, सचमुच उस समय उसके समान अन्य कौन होता? किसी के उससे बढ़कर होने की तो बात ही क्या? इसीलिए स्मृति संप्रज्ञान के साथ माता महामाया के गर्भ में प्रवेश करने के समय से, दस महीनों तक स्मृति संप्रज्ञान में ही रहता हुआ, अब स्मृति संप्रज्ञान के साथ ही धरती पर पांव रखता है तो अपने संग्रहीत अपरिमित धर्म-बल से इन दस सहस्र चक्र वालों को देखता हुआ यह उद्घोषणा करता है –

अग्गोहमस्मि लोकस्स : लोक में मैं अग्र हूं।

जेट्ठोहमस्मि लोकस्स : लोक में मैं ज्येष्ठ हूं।

सेट्ठोहमस्मि लोकस्स : लोक में मैं श्रेष्ठ हूं।

अयमन्तिमा जाति : यह मेरा अन्तिम जन्म है।

नत्थि दानि पुनब्भवो : अब एक बार भी पुनर्जन्म नहीं होगा।

जन्मते ही बोधिसत्त्व की यह मंगल घोषणा सचमुच कितनी सत्य थी! सचमुच यह उसका अंतिम जन्म ही साबित हुआ! इस प्रकार बोधिसत्त्व भी धन्य हुआ! और.....

धन्य हो उठे सारे लोक परलोक! क्यों कि पृथ्वी पर एक ऐसे सत्त्व ने जन्म लिया, जो कि बुद्धत्व प्राप्त कर ऐसा धर्मचक्र प्रवर्तन करेगा जिससे कि धर्म के नाम पर भिन्न भिन्न तीर्थों में, संप्रदायों में, मत-मतांतरो में उलझे हुए लोग, भिन्न भिन्न निकम्मी निरर्थक दार्शनिक मान्यताओं में भरमाएं लोग, भिन्न भिन्न कर्मकांडोंऔर अतिधावन में भटकते हुए लोग, शुद्ध, सार्वजनीन, सांदृष्टिक, आशुफलदायी और वैज्ञानिक धर्म पाएंगे, और भवचक्र से विमुक्त होंगे।

चारों ओर प्रसन्नता का माहौल था। उदासी के बल देवपुत्र मृत्युराज मार के मुख पर छायी हुई थी। अब उसके बाड़े में विचरने वाले प्राणियों का बाड़ा-बंधन टूटेगा, अनेक लोगों पर उसकी सत्ता का प्रभाव कमजोर पड़ेगा। अनेक लोग मृत्यु के चंगुल से मुक्त होंगे।

भले मार दुखी हो।

परंतु अनेकों का कल्याण होगा! मंगल होगा! स्वस्तिमुक्ति होगी! और हुआ ही!

इस प्रकार बोधिसत्त्व को अंतिम जन्म देनेवाली महाशाक्यराज संवत् ६८ की यह वैशाख पूर्णिमा अनेकों के लिये धन्यता का कारण बनी। और स्वयं भी धन्य धन्य ही हुई।

यह हमारे लिए भी कल्याण का कारण बने। हम भी इससे प्रेरणा पाएं और अपना मंगल साध लें।

मंगल मित्र

स. ना. गो.

***

शाक्य राजवंश और शाक्य राज्यसंवत्

कल्प के आरंभ में जब मनुष्य जाति एक समूह में रहने लगी तो पारस्परिक संबंधो में उत्पन्न होने वाली जटिलताओं और कठिनाइयों को

दूर करने के लिए तथा सामाजिक संबंधों को व्यवस्थित करने के लिए लोगों को एक शासक की आवश्यकता महसूस हुई। अतः सबने मिलकर एक योग्य व्यक्ति का चुनाव किया जो उनपर शासन कर सके। क्योंकि वह सर्वसम्मति से चुना गया था अतः महासम्मत कहलाया। पृथ्वी पर वह पहला शासक हुआ।

इसी महासम्मत के वंश में एक महाप्रतापी राजा हुआ – ओक्काक (ईक्ष्वाकु)। वह सूर्य के सामान तेजस्वी होने के कारण उसके वंशज सूर्यवंशी भी कहलाये।

महाराज ओक्काक को रानी भक्ता से नौ संतान हुईं। पाँच पुत्रियां और चार पुत्र। महारानी भक्ता की मृत्यु हो जाने पर राजा ने एक नवोढ़ा युवती से विवाह कर उसे अग्रराजमहिषी का पद दिया, जिसने अपने पुत्र के लिए राज्य के उत्तराधिकार कि मांग की। काम-मोह में डूबे हुए राजा ने उस की माँग स्वीकार कर ली। पर फिर उसे पश्चात्ताप हुआ। उसने अपनी पूर्व पत्नी की संतान को राज्य की सीमा के बाहर कहीं सुरक्षित जगह जाकर निवास करने का आदेश दिया और समझाया कि उसकी मृत्यु पर वह राज्य को अपने अधिकार में ले ले। बड़ी रानी के पुत्र पुत्रियों ने देश-निकाले को सहर्ष स्वीकार किया। परंतु पिता की मृत्यु पर अपने सौतेले भाई का राज्य छीनकर उस पर अपना अधिकार जमाने की बात उन्हें अच्छी नहीं लगी। उन्होंने अपने पराक्रम और बाहुबल से अलग राज्य बसाने का संकल्प किया। वे हिमवंत प्रदेश में जाकर बोधिसत्त्व कपिलमुनि के आश्रम में रहने लगे। वहीं उन्होंने कपिलवस्तु राजधानी की स्थापना की। वे नया राज्य स्थापित करने में सफल हुए। इस सराहनीय शक्यता के कारण वे शाक्य कहलाये। चार बहनों और चार भाईयों ने परस्पर विवाह कर लिया जो कि रक्तशुद्धि के नाम पर उन दिनों प्रचलित था। प्रिया नाम की सबसे बड़ी बहन ने वाराणसी के तत्कालीन राजा राम से विवाह किया। उन्होंने कपिलवस्तु के समीप ही कोलीय राज्य की स्थापना की, जिसकी राजधानी देवदह बनी। दोनो राजकुलों को अपनी रक्तशुद्धता का बड़ा अभिमान था। अतः किसी अन्य कुल में विवाह कर के रक्त-मिश्रण के दोष से बचने के लिये पीढ़ियों तक कोलिय और शाक्य परस्पर आवाह-विवाह करते रहे। यह क्रम सदियों तक चलता रहा।

जयसेन शाक्य वंश का एक बहुत प्रतापी राजा हुआ। उसका एक पुत्र था सिंहहनु और एक कन्या थी यशोधरा। उसी समय कोलियों का राजा था देवदह शाक्य जिसका पुत्र था अंजन और पुत्री थी कात्यायिनी। देवदह के पुत्र अंजन का विवाह जयसेन की पुत्री यशोधरा से हुआ। जयसेन के पुत्र सिंहहनु का विवाह देवदह की पुत्री कात्यायिनी से हुआ। अंजन और सिंहहनु दोनो ही जयसेन की तरह बड़े प्रतापी थे। उन दोनो का राजपुरोहित ब्राह्मण असित कालदेवल था जो कि ज्योतिष और शरीर लक्षण शास्त्र का पंडित तो था ही, साथ ही साथ आठों ध्यान समाधियों में भी पारंगत था और अनेक प्रकार की ऋद्धियों का धनी था।

उस समय एक बहुत पुराना संवत् चल रहा था जिसके ८७४७ वर्ष पूरे होने पर राजपुरोहित ऋषि असित कालदेवल के परामर्श पर शाक्यों ने उसे रुकवा दिया और एक अच्छे मुहूर्त पर नया महाशाक्य संवत् चलवाया। इस संवत् के दसवे वर्ष आषाढ़ पूर्णिमा शनिवार को महाराज सिंहहनु की महारानी कात्यायिनी ने शुद्धोदन को जन्म दिया। इसके पश्चात् उसने चार पुत्र धोतोदन, शक्कोदन, शुक्कोदन, और अमितोदन तथा दो पुत्रियां अमिता और पमिता को जन्म दिया।

नये महाशाक्य संवत् के बारवे वर्ष में कोलिय राजा अंजन की रानी यशोधरा ने महामाया नाम की पुत्री जन्मी, और उसके बाद प्रजापती नाम की एक और पुत्री तथा दंडपाणी और सुप्पबुद्ध नाम के दो पुत्र। शुद्धोधन का विवाह कोलीय धीता माहामाया और उसकी छोटी बहन प्रजापती से हुआ। और सुप्पबुद्ध का विवाह शाक्यधीता अमिता से हुआ। महारानी महामाया ने वृहस्पतिवार आषाढ़ पूर्णिमा शाक्य संवत् ६७ को गर्भधारण किया और शुक्रवार वैशाख पूर्णिमा शाक्य संवत् ६८ को सिद्धार्थ गौतम को जन्म दिया। पुत्र जन्म के सातवे दिन जब महामाया का देहांत हुआ तो गर्भवती प्रजापती ने नंद नामक पुत्र को जन्म दिया, जिसे उसने धाय को सोंपकर सिद्धार्थ को अपना दूध पिलाकर पालने का उत्तरदायित्व लिया। दो वर्ष पश्चात् प्रजापती गौतमी को नंदा नाम की एक कन्या भी हुई।

कोलीय सुप्पबुद्ध को अमिता से यशोधरा नामक पुत्री और देवदत्त नामक पुत्र हुआ। शाक्य संवत् ८४ में सिद्धार्थ और यशोधरा का विवाह हुआ। शाक्य संवत् ९७ आषाढ़ी पूर्णिमा सोमवार के दिन सिद्धार्थ ने गृह त्याग किया। शाक्य संवत् १०३ की वैशाख पूर्णिमा बुधवार के दिन उन्हें सम्यक्संबोधि प्राप्त हुई। शाक्य संवत् १४८ की वैशाख पूर्णिमा मंगलवार के दिन उनका महापरिनिर्वाण हुआ और पांच दिन बाद रविवार को उनका दाह संस्कार हुआ। और इसके २५ दिन बाद बृहस्पतिवार ज्येष्ठ कृष्ण प्रथमी को धातु वितरण का कार्य सम्पन्न हुआ।

सारे शाक्य वंश पर बुद्ध का व्यक्तित्व छा गया था और लोक गुरु होने के कारण सारे विश्व पर उनका प्रभाव फैल गया था। अतः एक सो अड़तालीस वर्ष के पश्चात् शाक्य संवत् स्वतः समाप्त हो गया और उसकी जगह बुद्ध संवत् चल पड़ा जिसका की अब २५३१ वां वर्ष चल रहा है।

***